अनिरुद्ध सिन्हा

गुलज़ार पोखर,मुंगेर (बिहार)811201

यथार्थ के प्रकाशित धरातल पर हिन्दी ग़ज़ल

वर्तमान समय में सच और झूठ ,न्याय और अन्याय,धर्म और अधर्म के सारे फासले मिट गए हैं । सच की निशानदेही करनेवाला साहित्य आज मौन है । क्या हमारा मौन शून्य की ओर चला गया है ?दुख की कारक शक्तियों को पहचानने और उनका प्रतिकार करने का दम-खम साहित्य से विसर्जित हो चुका है ?शब्दों के संस्कार मात्र एक अवैध नगरी के संवाद बनकर रह गए हैं ?ऐसे ढेर सारे प्रश्न हैं जिनके उत्तर अभी खोजे जाने हैं ।

साहित्य सदैव अपनी विपुल सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण-संवर्धन और अपने परिवेश,समाज और देश के मानसिक विकास की धारा को उन्नत बनाने की दिशा में अग्रसर रहा है । मगर हाल के वर्षों में पाठकों की उदासीनता हमें काफी हैरान और बेचैन करती है । कुछ तो कारण है ? लेखकों और पाठकों के बीच पारदर्शिता का अभाव या लेखकों की संवादहीनता । जिस कारण लेखकों और पाठकों के सम्बन्धों में तनाव पैदा हो रहे हैं । अगर यही स्थिति रही तो इसके अंजाम क्या होंगे,कोई नहीं जानता।

यह सच है कि साहित्य की सफलता और असफलता पठनीयता पर निर्भर करती है । लेकिन हाल के वर्षों में (जिसे हम दुष्यंत कुमार के काल से भी जोड़कर देख सकते हैं} वर्तमान स्थिति में परिवर्तन की आकांक्षा रखनेवाले कवियों ने ग़ज़ल को हिन्दी कविता में एक नई विधा के रूप में प्रस्तुत किया और उसमें देश की जानता के दुख ,संघर्ष ,आशा ,आकांक्षाओं को अंकित करने का प्रयत्न किया । जैसा कि यह भ्रांति फैलाई गई कि छंद के माध्यम से यथार्थ का चित्रण संभव नहीं ।छंद का बंधन यथार्थ की स्वायत्ता को रोकता है । लेकिन इस जटिल पक्ष को स्पष्ट करने के लिए कवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण उसकी लेखकीय क्षमता के आधार पर करना होगा जहां पर छंद मुक्ति के नाम पर सहुलियत लेने की गुंजाइश नहीं बनती । इसी सहुलियत के नाम पर छंद को हाशिए पर धकेलने की कोशिश की गई ।कला और सौंदर्य के साथ घोषित रूप से षड्यंत्र किया गया । इलियट का विचार है कि कला रूप में भाव की अभिव्यक्ति का एकमात्र ढंग यह है कि उस वस्तु को अन्योन्याश्रित बनाया जाए अर्थात किसी वस्तुसमूह ,घटना अथवा घटना-क्रम को उस विशिष्ट भाव का सूत्र बनाया जाए । और यह कार्य इस प्रकार किया जाए कि जब कभी वह वाह्य वस्तु -समूह प्रस्तुत किए जाएँ जिनके द्वारा संवेदनीय अनुभूति की उपलब्धि हो तो उस मूल भाव का संचार तुरत हो जाय। अब यहाँ प्रश्न उठता है संवेदना से कला और सौंदर्य को अलग करके किस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है और इसका प्रभाव पाठक पर क्या पड़ेगा। इसका सीधा सा उत्तर है कठोर यथार्थ जिससे साहित्य का अंतरंग और वहिरंग.....दोनों सामंती विचारधारा से लहूलुहान हो जाता है । मेरे विचार से

 ISSN:2583-8849

सामंती विचारधारा या संस्कृति का आधार मुक्तछंद कविता है । मुक्तछंद कविता ही सामंती यथार्थ का वह मूल बिन्दु है जिसके आधार पर छंद को मृत घोषित करने का षड्यंत्र किया गया ।

हमें तो यह देखना होता है कि साहित्य रचना के समय ,साहित्यकार की अपनी विचारधारा एवं उसकी अपनी कल्पनाशक्ति वस्तुगत यथार्थ को किस प्रकार प्रभावित करती है न कि थोपी हुई विचारधारा के माध्यम से यथार्थ की संपूर्णता को रचनात्मक विस्तार दिया जाए । यह आवश्यक है दिमाग में जिस मूर्त रूप का निर्माण होता है उसको संकेतात्मक बिन्दुओं अथवा रेखाओं के द्वारा ही साहित्य में अभिव्यंजित किया जाए । पाठक स्वयं अपनी कल्पना एवं भावनाशक्ति के माध्यम से उन प्रतीकात्मक बिन्दुओं का पूरा परिचय प्राप्त कर लेगा जिन्हें लेखक ने उनके समक्ष रखा है। लेकिन आज स्थितियाँ भिन्न हैं। जो लिखा जा रहा है उसमें लेखक दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ता। यथार्थ का आचरण और लेखन का आचरण अलग-अलग होता है । जबकि पाठक लेखक को भी उसके लेखन में तलाश करता है । कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया है साहित्य के कुछ ऐसे भी मठाधीश हैं जो बड़े-बड़े पदों पर आसीन होकर शोषितों और वंचितों के हित में लेखन कर रहे हैं लेकिन वही जब यथार्थ के धरातल पर शोषितों के हित की बात आती है तो रिश्वत लेने से भी नहीं हिचकते हैं । टोल्स्तोय का कहना है 'सौंदर्यवाद के मुक़ाबले में मैं भव्य यथार्थवादी साहित्य को रखता हूँ । इसका कार्यभार मानव का निर्माण करना है । इसकी विधि प्रतिनिधि पात्र की रचना है । मानवजाति का कल्याण।उसे संपूर्णता की ओर ले जाना इसका प्रेरणाधार है । इसकी निष्ठा मानव की महिमा में है । इसका मार्ग सीधे उच्चतम ध्येय की ओर है ,यह भाव-संवेग और उत्तेजना में महान व्यक्ति के प्रतिनिधि पात्र की रचना है।

हमारा यथार्थ भविष्य के बारे में भी एक निश्चित आधार के साथ सोचने और पहचानने की क्षमता प्रदान करता । इसके लिए जरूरी है लेखन और चरित्र का सामंजस्य और नयापन । व्यक्तिवादी प्रवृतियों का लोप । यथार्थवाद में कभी-कभी लेखक की निजी धारणा और सामाजिक दशा के चित्रण में विरोध पाया जाता है ।

इसप्रकार के पूर्वाग्रही यथार्थ के मोह के कारण रचना का कला-स्तर तो गिरा ही साथ ही पठनीयता का संकट भी उत्पन्न हुआ । हिन्दी कविता लगातार पाठकों से दूर होती चली गई । वर्तमान काल को सामाजिक यथार्थवादी ग़ज़लों का युग कह सकते हैं क्योंकि काव्य की वर्तमान विधाओं में ग़ज़ल ही सबसे सशक्त एवं विस्तृत विधा है जिसे हाल के दिनों में पाठकीय स्वीकृति मिली है । हम इस बात से भी इंकार नहीं करते हैं कुछ ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में प्रचारात्मक स्वर उभरने के कारण इसकी कला नष्ट हुई है । ग़ज़ल सिर्फ संकेत देती है , खुलकर प्रचार नहीं करती । ऐसा इसलिए हो रहा है कि कुछ ग़ज़लकर अतियथार्थवाद के मोह में आकार क्रांतिकारी काव्यशिशु बन जाते हैं । उनकी ग़ज़लों का लालित्य भी मर जाता है । ग़ज़ल का अपना शिल्प है । कहन की मर्यादा है । ग़ज़ल के आचरण के विरुद्ध जो कुछ कहा जाएगा वह एक साधारण बयान होगा ,ग़ज़ल नहीं । ग़ज़ल यथार्थ को काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने की अद्भुत कला है । "अभिव्यंजना ,कला या काव्य एक सौंदर्य सृष्टि है । इसकी सृजन -प्रक्रिया की चार अवस्थाएँ हैं । प्रथम अवस्था ,कल्पना पर पड़े प्रभाव की, दूसरी अवस्था मानसिक -सौंदर्यात्मक संश्लेषण की , तीसरी सौंदर्यानुभूति के आनंद की तथा चौथी उसकी शारीरिक क्रिया के रूप में रूपान्तरण की यथा ध्वनि ,स्वर ,गति ,रंग ,रेखा आदि के रूप में प्रकटीकरण की । ये चारों अवस्थाएँ ,जिनकी सहजानुभूति या अभिव्यंजना के साथ निर्बाध रूप से पूर्ण या सफल होती है,वही बड़ा कवि या कलाकार

होता है । "(क्रोचे)अब यह कहने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए कि आज की हिन्दी ग़ज़लें अपनी विस्तारता का ख्याल रखते हुए भारतीय संस्कृति के जमीनी-यथार्थ और संघर्ष के सौंदर्य से अवगत है । पठनीयता के लिहाज से इसकी लोकप्रियता का अंदाज़ लगाया जा सकता है । दोहा के मूल स्वभाव से प्रेरित होते हुए कम से कम शब्दों में बड़ी बात कहकर पाठकों को एक पल के लिए हिलाकर रख देती है । जैसा कि यह काव्य लेखन के बारे में कहा भी गया है शैली और स्वस्थ प्रवृति ही नहीं,बल्कि विवेकशीलता भी शब्दों के प्रयोग में सुस्पष्टता की मांग करती है । जहां शब्द बहुत अधिक होते हैं ,और जहां वे शिथिल होते हैं,वहाँ विचार निर्जीव होता है । उलझे विचारों को सरल ,अचूक शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता । उपरोक्त सारी शर्तों का पालन करते हुए आज की हिन्दी गजलें दुख,क्रोध की वासनाओं को उभारती और उत्तेजित करती हैं.....

है अगर मेरी तो बस इतनी कहानी है
आँख में बाकी अभी थोड़ा सा पानी है

(भारत भूषण आर्य)

लेखन-कौशल जीवन के सत्य को व्यक्त करने की कला है । प्रत्येक कला का संबंध रस से है और जो बात कला के लिए कही जा सकती है वही बात व्यापक सौंदर्य के लिए भी कही जा सकती है जिसमें मानसिक सौंदर्य और यथार्थ के अपने कलात्मक उद्देश्य साथ –साथ शामिल हो जाते हैं । हालांकि इसपर लोगों की अपनी-अपनी राय हो सकती है । सौंदर्य में जितनी अच्छाई है उससे कहीं अधिक बुराई निकाल दी गई है । यथार्थ के दोहरे मापदंड के बारे में सभी जानते हैं आज यथार्थ के नाम पर कुछ ऐसे भी लिखे जा रहे हैं मानो समस्त युग का भार साहित्य ने ही अपने कंधे पर उठा लिया है । समकालीन साहित्य आज इसी अतियथार्थ के बोझ से दबा जा रहा है जहां सौंदर्य और कला की उपयोगिता मृतप्राय सी है । लेकिन हिन्दी ग़ज़ल के साथ यह संकट नहीं है , इसकी अभिव्यक्ति में सौंदर्य और कला का विशिष्ट प्रयोग ,विशिष्ट संगुंफन और विशिष्ट विधान स्पष्ट रुप से देखे जा सकते हैं ।

सौंदर्य कल्पना की आँखों का गुण है । इसका मूलतत्व ग़ज़ल के शिल्प –सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है । ऐसी मान्यता निर्धारित करनेवाले लोग ग़ज़ल का वाह्य रुपायन करते हैं । हीगेल ने कलाओं का जो वर्गीकरण किया है उसमें भी ललित तथा उपयोगी कलाओं के विभाजन के मूल में काव्य का एक प्रधान तत्व ....सौंदर्य ही परिलक्षित होता है । कविता से सौंदर्य को हटाकर नहीं देखा जा सकता । पाठकीय अरुचि का खतरा बना रहता है । हिन्दी ग़ज़लकारों ने समय रहते इस खतरे को भाँप लिया । समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में यथार्थ और सौंदर्य का स्वर साफ-साफ सुना जा सकता है ।

प्यार करता है कोई हमको तो क्या देता है
आँख से तितलियाँ आँखों से उड़ा देता है

ध्रुव गुप्त

मुलायम मनोभावों के ग़ज़लकार ध्रुव गुप्त कालचिंतन के बहाने जीवन की टूटती आशाओं को बचाए रखने की कल्पना को आदत में शुमार किए जाने की ज़िद करते हैं जरुरत के मुताबिक दृश्यात्मक्ता की सीमाएं तैयार करते हैं और संवेदनशील होकर समकालीन कथ्यों को पकड़ते हैं । आदमीयत और ग़ज़ल दोनों के पक्ष में,दोनों के हक़ के लिए सुरीली आवाज़ में मजबूती के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं । उपरोक्त शेर में प्रेम और टूटन का यथार्थ की तीब्र अनुभूति को आज के जीवन के औचित्य के समर्थन के रुप में प्रस्तुत किया है । इन्होंने प्रेम और जीवन मार्ग की अटलता के समर्थन में तितली को एक साधन या बिम्ब के रुप में लिया है और इस प्रकार वे अप्रत्यक्ष रुप से प्रेम की अनन्यता से पाठक को

कवि की पूर्णता उसके बिना कैसे मानी जा सकती है। इसी अंदाज़ को आगे बढ़ाते हुए धर्मेंद्र गुप्त साहिल कहते हैं .....

जब से आगे निकल गया है तू
दोस्त कितना बदल गया है तू
तेरी ख़ातिर बदल लिया ख़ुद को
और ख़ुद ही बदल गया है तू

उपरोक्त शेरों के केंद्र में प्रेम है ,लेकिन यह प्रेम अपने समय और समाज से संवाद करता है । प्रेम के इस टूटते बिखरते मानवीय सम्बन्धों और उनके बीच आदमी के अकेलेपन का दर्द भी साफ महसूस किया जा सकता है । आज स्थिति बहुत बदल गई है । आधुनिक यथार्थवादी आलोचक जब सौंदर्यशास्त्र की चर्चा करते हैं तो ,उनकी रूचि कलात्मक सृजन की प्रकृति को उजागर करने में उतनी नहीं होती ,जितनी कि सौंदर्य की समस्याओं को मांसल उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने में होती है ।इसे विडम्बना ही कहा जाए । पुराने और नए आलोचकों के सौंदर्य संबंधी दृष्टिकोणों में एक गुणात्मक अंतर है । उनकी अभिरुचि सबसे पहले इस बात में पायी जाती है किआज के सौंदर्यशास्त्रीय समस्याओं में रूचि व्यक्तिगत कारणों का परिणाम नहीं अपितु वैचारिकता की है । हम इसे अतियथार्थवाद का मोह भी कह सकते हैं ।

मैं यह मानता हूँ सौंदर्य व्यक्तिगत विचार को प्रतिबिम्बित करता है । इसमें व्यतिगत भावना की प्रबलता रहती है । इस खास को आम बनाकर भी तो देखा जा सकता है। निहित जीवन की यथार्थता के विश्लेषण और विवेचन सामाजिक जीवन के पहलुओं के साथ नहीं कर सकते । जरुरी है कथ्य की दृष्टि सत्यान्वेषी होनी चाहिए। इसी दृष्टि को केंद्र में रखकर अशोक मिजाज को देखा जा सकता है . .....

मैं समंदरों का मिज़ाज हूँ अभी उस नदी को पता नहीं
सभी मुझसे आके लिपट गईं मैं कभी किसी से मिला नहीं
ये मुक़द्दरों की लिखावटें जो चमक गईं वो पढ़ी गईं
जो मेरे कलम से लिखा गया उसे क्यों किसी ने पढ़ा नहीं

यह यथार्थ का शाश्वत रूप है । प्रेम और सौंदर्य के वातावरण में यथार्थ को लाने का प्रयास किया गया है । अशोक मिज़ाज अपने शेरों में पौरुष ,आकर्षण और ऊंचाइयों की बात करते हैं । हम यह नहीं कह सकते इसमें व्यक्तिगत कथ्य की तानाशाही है बल्कि इसमें सामूहिक चरित्र निर्माण के माध्यम से आधुनिकता के तर्कवाद के आगे अपने प्रतिरोधात्मक स्वभाव को व्यक्त करते हुए चरित्र आस्था पर बल दिया गया है जिसका क्षरण इस सदी में काफी हुआ है । क्या हम इस लेखकीय सौंदर्य से इंकार कर सकते हैं। इसमें शायर का अपना दर्द भी परिलक्षित हो रहा है ।

अपनी पहचान और नवीन पाठक वर्ग ढूँढने में प्रयत्नशील हिन्दी हजाजल अपनी लोकप्रियता के बल पर आज सीधे-सीधे समसामयिक समस्याओं से टकरा रही है। हमारे हौसलों को उड़ान देकर अपने चाहनेवालों को आवाज़ दे रही है। जुल्म और नाइंसाफी के खिलाफ इसका बाँकपन मचलता है तो हजारों मील दूर बैठे लोग अपने आंसुओं की रंगत पहचानने लगते हैं। यह हमारी उदासियों का राज़दार भी है और खामोशियों के सफर में हमारी जुबान में हमारी हम-जुबान भी। हाल जो भी हो यह हमारा दामन नहीं छोडती। इसकी अपनी ज़मीन है जो हमारे आस-पास जुड़ी है,जिस पर हर पल इसकी समवेदनाएँ विकसित हो रही हैं।

इसकी आंतरिक बुनावट ही इसे विशेष बनती है। सहज सुगम और कलात्मक भी। इसके सौंदर्यशास्त्र को सिर्फ छंद के नियमों के अनुसार ही नहीं समझा जा सकता। आंतरिक स्थापत्य के साथ इसकी परंपरा के गतिशील तत्वों की जड़ों को भी

ज़रूरी है छंदानुशासन के साथ उसके अंदर संप्रेषणीयता का भी लालित्य हो। ग़ज़ल पहले सुनी जाती है,फिर लिखी जाती है। गुरु-शिष्य की परंपरा के तहत ऐसा होता है। मेरा आशय मंचीय ग़ज़लों से कदापि नहीं है। ऐसे ग़ज़लकार स्वयं सक्षम है। वह ख़ुद तय करे कि ग़ज़ल की शर्तों को उसने कहाँ तक पालन किया है। 'कथ्य और संवेदना के नाम पर कहीं ग़ज़ल के चरित्र के साथ खिलवाड़ तो नहीं हुआ"। ऐसा देखा गया है किसी-किसी ग़ज़लकार को कभी-कभी कथ्य और संवेदना का दबाव आत्म-समर्पण करने के लिए मजबूर कर देता है। जिससे ग़ज़ल की अंतरलय और छंदानुशासन भंग हो जाता है। इस संदर्भ में कई ग़ज़लकारों की ग़ज़लों का उल्लेख किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर मंच पर पढ़ी जाने वाली कुछ ऐसी भी ग़ज़लें मिलती हैं जिनमें वैश्विक रचना मानव में सुविहित,निश्चित संदर्भ-सूत्र नहीं मिलता और न ही हमारे जीवन का कोई केंद्र ही मिलता है। मंचीय फूढडता के नाम पर मांसल सौंदर्य की आकर्षक चर्चा ही मिलती है,जिसका हिन्दी में कोई जनाधार नहीं है।

हिन्दी ग़ज़ल की फिसलती हुई यह सच्चाई हमें परेशान तो करती है लेकिन वहीं दूसरी ओर कुछ ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में प्रगीतात्मक संवेदना के साथ ग़ज़ब की ताजगी देखने को मिलती है। इन्हीं कुछ ग़ज़लकारों में कमलेश भट्ट कमल का नाम प्रमुखता के साथ हमारे सामने आता है। इनकी ग़ज़लों की अंतर्वस्तु और अभिव्यक्ति में एक पारदर्शिता है। कहीं कोई भटकाव और भ्रांति की पथरीली राहों पर चलने का जोखिम उठाना नहीं पड़ता। सारी ग़ज़लें में यथार्थ के साथ सुकल्पित कल्पना रहती है। पाठ के स्तर पर भी अपना खास प्रभाव डालती है। मनुष्य से लेकर प्रकृति के सनातन यथार्थ की वैविध्यपरक संवेदना निःसन्देह हिन्दी ग़ज़ल को एक नया आयाम देती है।

कमलेश भट्ट कमल अपनी ग़ज़लकारों की पीढ़ी में काफी लोकप्रिय हैं। इनके कई शेर पाठकों के बीच लोकोक्ति बन चुके हैं। ऐसे उन शेरों का मुहावरा सरल नहीं है। आलोचक भी जिन्हें खोलने से हिचकिचाते हैं ....

वो आँखें भी तो होनी चाहिए जो देख पाएँ
उभरता है कहाँ किस तट पे जीवन डूबता है

कई खुशियाँ वहाँ हर रोज़ बिखरी-सी पड़ी थीं,पर
तनावों की वजह से लोग उनमें रंग नहीं पाये

----------कमलेश भट्ट कमल

आज समाज के आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्रों में वैचारिक संघर्ष ने अत्यंत उग्र रूप धारण कर लिया है। पूरे साहित्य समाज में वैचारिक अवसाद की स्थिति है । पाठक समाज पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ।इस दिशा में साहित्य में कला और सौंदर्य की भूमिका बढ़ गई है। सामाजिक चेतना के अन्य रूपों की अपेक्षा साहित्य और सौंदर्य की समस्या पर बल देने की अवश्यकता है। सौंदर्यशास्त्रीय विश्लेषण के तरीकों के प्रश्न को सिर्फ स्त्री और प्रकृति के प्रश्न के साथ जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। यह ठीक है जीवन की आत्मिक संस्कृति श्रम के आधार पर पैदा हुई है तो क्या मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्रीय साहित्य का विवेचन बेमानी हो जाता है ?

कुछ लोगों का मत है कि हिन्दी में ग़ज़ल के स्वभाव के साथ काफी छेड़छाड़ किया गया है । मैं इस मत से पूरी तरह सहमत हूँ। हिन्दी में ग़ज़ल का प्रवेश मुक्तछंद कविता के विरोध में हुआ है । मुक्तछंद कविता आम पाठकों के द्वारा नाकारी गई यह भी सच है । अब प्रश्न उठता है मुक्तछंद कविता के नाकार के कारण क्या हैं तो इसका सीधा सा जवाब है लय का लोप और अतियथार्थ के कारण खुरदुरापन। ग़ज़ल

संगीत शाश्वत है । इसका स्वभाव सरस और लचीला है । यह चिल्लाना पसंद नहीं करती और न ही उपदेशक बनकर भाषण ही देती है । जब इसकी अपनी प्रवृति आहत होती है तो यह नारे और शोर में परिवर्तित हो जाती है । हिन्दी ग़ज़लकारों के समक्ष यह एक बहुत बड़ी समस्या है क्योकि आज के प्रायः ग़ज़लकार जनवाद के नाम पर छंद की जड़ों तक पहुँचना पसंद नहीं करते । उनके लिए सूर,तुलसी ,पंत,प्रसाद आदि अप्रासंगिक हो चुके हैं यानि जैसी मिट्टी वैसा संस्कार।

पुरानी संस्कृति और आयातित संस्कृति के बाज़ार में हिन्दी ग़ज़ल पहचान के संकट से जूझ रही है । इसका मुख्य कारण है भाषा के बदलते रुप । उर्दू शब्दों के प्रति भावुकता भरा झुकाव जो हिन्दी काव्य को परिभाषित नहीं करता और न ही पाठकीय अपेक्षाओं को पूरी करता। पाठक ग़ज़ल को उसी भाषा के मूल शब्दों के साथ पढ़ना चाहता है जिसमें वह लिखी गई है जो उसकी मानसिक स्थिति के लिए लाक्षणिक होता है। साथ ही सचेत ढंग से कथ्य अनुरुपता का अनुभव भी करता है । ऐसा नहीं होने पर पाठकीय भावना शून्यता की ओर जाने का खतरा बना रहता है। हिन्दी के ऐसे ढेर सारे ग़ज़लकार हैं जो फ़ारसी और उर्दू शब्दों की गुलामी कर रहे हैं। उन्हीं की ओर से यह नारा भी उछाला जाता है 'ग़ज़ल तो ग़ज़ल है हिन्दी उर्दू का बंधन क्यों ?"

शब्द-चयन ग़ज़ल के लिए आवश्यक तत्व है ।अपनी भाषा के शब्द जो तुरत समझा जा सके । कठिन शब्दावली के प्रयोग से कथ्य समझ में न आने कारण प्रभावहीन होने का डर बना रहता है । ऐसे आवश्यकतानुसार नयी शब्दावली का प्रयोग किया जा सकता है लेकिन विवेक के साथ जिसे पाठक बहिष्कार न करे। यह बात हिन्दी ग़ज़लकारों को नहीं भूलनी चाहिए कथ्य यदि हिन्दी ग़ज़ल का संस्कार है तो भाषा उसकी संस्कृति। संस्कार और संस्कृति से सम्झौता नहीं किया जा सकता । इन दोनों अंगों से युक्त होकर ही ग़ज़ल बनती है .....

वेदना को शब्द के परिधान पहनाने तो दो
ज़िंदगी को गीत में ढलकर तनिक आने तो दो
खोज ही लेंगे नया आकाश ये नन्हें परिंदे
इन परिंदों को ज़रा तुम पंख फैलाने तो दो
हरेराम समीप

दाढ़ें तो हड्डियों को चबाने के लिए है
आगे के नकली दांत दिखाने के लिए है
सूरत से शाकाहारी वे सीरत से अघोरी
बदनाम शव का मांस भी खाने के लिए है
चंद्रसेनविराट

वर्णित शेरों में अर्थतत्व के साथ भाषायी प्रतिबद्धता भी है। ग़ज़ल में अर्थ-तत्व
के चमत्कार से पूर्ण होने के कारण अलंकृत रूप धारण करती है जिसमें भाषा का अहम योगदान होता है।भाषा ही अपने साहित्य का पहला मिजाज होती है। हिन्दी के ऐसे ढेर सारे ग़ज़लकार हैं जो संस्कार के मामले में दरिद्र हैं । मेरे खयाल से वे ग़ज़ल को लेकर संदेह और दुविधा के शिकार हैं ।विश्लेषणों और लेखों में इसका खंडन भी होता है । ग़ज़ल जैसी महत्वपूर्ण और गंभीर विधा को चुट्कुलेभरे शब्दों के सहारे हिन्दी में स्थापित होने की कल्पना नहीं की जा सकती चाहे हम जितने चीखें,चिल्लाएँ या आँसू बहाएँ। अपना समय ही नष्ट करना होगा । शब्द संस्कार के बिना प्रभाव की कल्पना मुश्किल है । आज की हिन्दी ग़ज़ल काव्यात्मक भावातुरता और आत्मवितुष्टि से पीड़ित नहीं है। इसके सारे शब्द उच्चतम संवेदनशीलता और उच्चतम गुणों से युक्त होते हैं। ऐसा इसलिए कहना पड़ रहा है,विवेकहीन लेखन सदैव भ्रम की स्थिति पैदा करते हैं जिसे पाठकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लेखक नए-नए विचारों को जन्म देता है। सारे विचार पाठक से होकर गुज़रते हैं। विचारों को क्रमबद्ध करने के लिए एक माहौल

बनाना पड़ता है या नारों की शक्ल देना पड़ता है। कालांतर में ये ही नारे विचारधारा का स्थान ग्रहण कर उसके प्रतीक बनते हैं। ऐसा नहीं होने पर रचना में झुकाव रहने के बावजूद रचनाओं में रचनाकार का योग नहीं मिलता लेकिन यह भी सच है नारे कोलाहल में नहीं बनते। उनमें मार्मिकता का भी योग रहता है। मार्मिकता लाने के लिए शांति चाहिए। शांति को परिवर्तन या मानवीय स्वाभाविक प्रवृति से अलग नहीं किया सकता। यही प्रवृति रचनाकार की रचनाओं में सुरक्षा और सहयोग प्रवृतियों के अंतर्गत आगे की सामाजिक प्रवृति की असली संभावना एवं क्षमता प्रदान करती है। विकास के शेरों में ऐसे ही भाव स्पष्ट हो रहे हैं। गहन चुप्पी के बीच से निकलते हुए इनके शेर पाठक के समक्ष उपस्थित होते हैं। शांति में ही यथार्थ का रूप प्रकट होता है जो निश्चय ही शुभ और स्वस्थ होता है----

दर्द का रास्ता हुआ है क्या
हौसला बेवफ़ा हुआ है क्या

तुम मुझे दो दुआ नहीं भी दो
क्या कभी हादसा हुआ है क्या
----------विकास

यह अद्भुत संयोग की बात है कि हिन्दी में ग़ज़ल का विकास सत्तर के दशक के बाद होना आरंभ हुआ । इस तरह इसकी उम्र चालीस –पचास वर्षों की है हिन्दी में ग़ज़ल के प्रवेश ने कविता के महत्व को बढ़ा दिया और इसने लोकप्रियता में कविता की दूसरी सारी विधाओं को पीछे छोड़ दिया । इसके विकासक्रम में बीच-बीच में भाषा का भी प्रश्न उठता रहा । जैसा कि मैं ऊपर ही चुका हूँ कुछ तथाकथित ग़ज़लकारों के कारण हिन्दी ग़ज़ल को भाषायी विवाद का संकट झेलना पड़ रहा है। लेकिन यह भी सच है ग़ज़लकार बनने की चेष्टा में उन्हें एकदिन अपना साहित्यिक वैशिष्ट्य भी गंवा देना पड़ेगा ।

अब जरूरी है कि हिन्दी ग़ज़ल को नए सिरे से विचारने और पुनर्मूल्यांकित करने का रास्ता अख़्तियार किया जाए ,विशेषकर दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल के निमित्त से जो हमारे सामने एक ऐसा दृष्टांत करती है जो शैली और भाषा के मामले में हिन्दी ग़ज़ल की कसौटी के रूप में काम करती है । ऐसे में सवाल उठता है कि आज की हिन्दी ग़ज़लें हमें संतुष्ट करती है ?इसका सीधा सा उत्तर है .. हाँ ....अगर कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो । हम इसे कुछ शेरों के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं .....

जब से ग़म की हवा चली सी है
तब से हर सिम्त खलबली सी है

रात कहानी कहने लगती
छत पर जब बिस्तर लगती है

----------डॉ भावना

जब से हमने सच्चाई का दामन थाम लिया
कदम-कदम पर सच कहने का दाम चुकाते हैं

--देवमणि पांडेय

उलझ रहे हैं सुलझते सवाल मत छेड़ो
मैं हो रहा हूँ दुखों से निढाल मत छेड़ो
॥नूर मुहम्मद नूर

घने जंगल से होकर हम सुरक्षित लौट आए हैं

नगर में भी सुरक्षित रह सकेंगे कह नहीं सकते

शुद्ध अन्तःकरण नहीं मिलता
स्वस्थ वातावरण नहीं मिलता
----------घनश्याम

सांझ लुढ़ककर ड्योढ़ी पर आ फिसली है
आँगन से चौबारे तक सब लाल हुआ
॥ गौतम राजरिशी

आपकी मर्दानगी को सिद्ध करने के लिए सामने होंगे शिखंडी और लड़ाया जाएगा (सुरेन्द्र चतुर्वेदी)

सत्य है भाषा की सामर्थ्य साहित्य में दिखाई पड़ती है साहित्य में भाषा की प्रतिबद्धता पहली शर्त है । भाषा के आधार पर की गई रचनाओं में वस्तुतत्व के प्रति लेखक की चिंतन-दृष्टि ,उसका आधारभूत मानसिक धरातल, एवं सामाजिक यथार्थ की एक दार्शनिक उद्भावना आदि नवीनताओं में व्यापकता और गहराई की मात्रा अधिक होती है । हम यह भी नहीं कहते जो शब्द में हिन्दी प्रचलित और स्वीकृत हैं उनकी भी अवहेलना की जाए। ग़ज़ल में हिन्दी के सहज और स्वीकृत शब्दों का प्रयोग आवश्यक है अन्यथा ग़ज़ल अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने में असफल होगी ।

इन दिनों विचारधारा को लेकर चिंतित रहनेवाले ग़ज़लकारों को बड़ी चुनौती हैअपनी व्यक्तिगत विचारधाराओं के संदर्भ में। फिर भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है । निराशा और अन्यमन्स्का के स्वर ग़ज़लों में स्वाभाविक है । मैं मानता हूँ हिन्दी ग़ज़ल ने समाज और राजनीति को इतना न प्रभावित किया हो लेकिन इसके प्रति एक नया मन बनता जा रहा है । आज की हिन्दी ग़ज़लों में विचार,भावना और सौंदर्यबोध आकुल और तीब्र आवेग के साथ शासित हो रहे हैं। लेखन में कुछ निश्चित सरोकार अंतर्निहित होते हैं जो समय की प्रासंगिकता तय करते हैं ।

मोबाइल -09430450098

धरोहर

अमीर ख़ुसरो

जब यार देखा नैन भर, दिल की गई चिंता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब राखे उसे समझाय कर

जब आँख से ओझल भया, तड़पन लगा मेरा जिया
हक़्क़ा इलाही क्या किया, आँसू चले भर लाय कर

तू तो हमारा यार है, तुझ पर हमारा प्यार है
तुझ दोस्ती बिसियार है, एक शब मिलो तुम आय कर

जाना तलब तेरी करूँ, दीगर तलब किसकी करूँ
तेरी जो चिंता दिल धरूँ, एक दिन मिलो तुम आय कर

मेरा जो मन तुमने लिया, तुमने उठा ग़म को दिया
तुमने मुझे ऐसा किया, जैसा पतंगा आग पर

ख़ुसरो कहै बातें ग़ज़ब, दिल में न लावे कुछ अजब
कुदरत ख़ुदा की है अजब, जब जिव दिया गुल लाय कर

 ISSN:2583-8849